

[2023] 4 एस. सी. आर 1144

पीतांबरन

बनाम

केरल राज्य और अन्य

(2023 की आपराधिक अपील संख्या 1381)

03 मई, 2023

[कृष्णा मुरारी और संजय करोल, न्यायमूर्तिगण]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:धारा 482-के अंतर्गत कार्यवाहियों को रद्द करना-482 के अंतर्गत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग न करना। औचित्य अपीलकर्ता द्वारा अन्य अभियुक्तों के साथ वास्तविक शिकायतकर्ता और अन्य व्यक्तियों को नौकरी दिलवाने के बदले में प्राप्त कर धोखा देने के लिए/धारा 420 के अंतर्गत-प्राथमिकी दर्ज करना-अंतिम प्रतिवेदन कि कोई उचित सबूत नहीं होने के कारण मामले को झूठा मामला माना जाना चाहिए-दाखिल की गई एक अन्य अंतिम प्रतिवेदन जिसमें कहा गया है कि पुलिस निरीक्षक ने जिला पुलिस प्रमुख द्वारा पारित आदेश के अनुसार आगे की जांच की-कार्यवाही को रद्द करने के लिए आवेदन-आवेदन रद्द नहीं किया गया--अपील पर अभिनिर्धारित अभिलेख पर यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि अभियुक्त संख्या 1, अपीलार्थी या वास्तविक शिकायतकर्ता द्वारा किया गया अभ्यावेदन गलत था या उन्हें इस तरह के अभ्यावेदन के झूठे होने की पूर्व जानकारी थी और केवल धोखा देने के इरादे से किया गया था-केवल घटक यह था कि सामान्य प्रक्रिया से, किसी भी व्यक्ति ने अभियुक्त को कोई पैसा नहीं दिया होता, और इस प्रकार, संपत्ति देने के लिए प्रेरित किया जाता जो अन्यथा उनके पास नहीं होता-केवल एक घटक को पूरा करने के साथ और केवल बेईमान इरादे या बयान के झूठ को दिखाने के लिए किए गए बयान, धारा की सीमा 420 का उल्लंघन नहीं किया गया

है, जो अपराध का गठन करता है-इस प्रकार, धारा 482 के अंतर्गत शक्ति का प्रयोग ना करना उचित नहीं है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को निरस्त कर दिया गया-दंड संहिता, 1860 -धारा. 420.

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:धारा 173 (8)-जाँच पूरी होने पर पुलिस अधिकारी का प्रतिवेदन जिला पुलिस प्रमुख ने आगे की जाँच का आदेश दिया जिसके अनुसार दायर की गई दूसरी अंतिम प्रतिवेदन-अनुमति-अभिनिर्धारित दंडाधिकारी के पास आगे की जाँच का आदेश देने की शक्ति है-नई जाँच/पुनः जाँच/नये सिरे से जाँच उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आती है-जिला पुलिस प्रमुख का आदेश संबंधित दंडाधिकारी द्वारा जारी आदेश के समान नहीं है-इस प्रकार, जिला पुलिस प्रमुख आगे की जाँच का आदेश नहीं दे सकते थे क्योंकि वह शक्ति या तो दंडाधिकारी या उच्च न्यायालय के पास होती है न कि किसी जाँच एजेंसी के पास ।

जाँच: आगे की जाँच और नए सिरे से जाँच/पुनः जाँच/नए सिरे से जाँच-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के बीच अंतर।

विनय त्यागी बनाम इरशाद अली (2013) 5 एससीसी 762:
[2012] 13 एससीआर 1005; टी. टी. एंटनी बनाम केरल राज्य (2001) 6 एससीसी 181:[2001] 3 एस. सी. आर. 942; विनुभाई हरिभाई मालवीय और अन्य बनाम गुजरात राज्य 2019 एस. सी. सी. ऑनलाइन 1346; रणधीर सिंह राणा बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली) (1997) 1 एससीसी 361:[1996] 10 पूरक एससीआर 880 जी. वी. राव बनाम एल. एच. वी. प्रसाद (2000) 3 एससीसी 693:[2000] 2 एससीआर 123; हरि प्रसाद चमारिया बनाम बिशुन कुमार सुरेखा (1973) 2 एस. सी. सी. 823; मीनू कुमारी बनाम बिहार राज्य (2006) 4 एस. सी. सी. 359:[2006] 3 एससीआर 1086; हेमंत धस्माना बनाम सीबीआई (2001)7SCC 536: [2001]1 पूरक SCR 646; (2001) 7 एससीसी 536:[2001] 1 पूरक एससीआर

646;देवेन्द्र नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य। (2023) 1 एस. सी. सी. 48; परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखंड राज्य (2013) 13 एस. सी. सी. 673; हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल 1992 सप्लीमेंट (1) एससीसी 335:[1990] 3 पूरक।एस. सी. आर. 259; निहारिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन 315; विजय कुमार घई और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य (2022) 7 एससीसी 124-संदर्भित किया गया है।

वाद विधि संदर्भ

[2012] 13 एससीआर 1005	संदर्भित किया गया है	कंडिका 7
[2001] 3 एससीआर 942	संदर्भित किया गया है	कंडिका 7
[1996] 10 पूरक एससीआर 880	संदर्भित किया गया है	कंडिका 7
[2000] 2 एससीआर 123	संदर्भित किया गया है	कंडिका 7
(1973) 2 एस. सी. सी. 823	संदर्भित किया गया है	कंडिका 7
[2006] 3 एससीआर 1086	संदर्भित किया गया है	कंडिका 15
[2001] 1 पूरक/एस. सी. आर. 646	संदर्भित किया गया है	कंडिका 16
(2023) 1 एससीसी 48	संदर्भित किया गया है	कंडिका 19
(2013) 13 एससीसी 673	संदर्भित किया गया है	कंडिका 21
[1990] 3 पूरक/एस.सी.आर.259	संदर्भित किया गया है	कंडिका 22
(2022) 7 एससीसी 124	संदर्भित किया गया है	कंडिका 24

आपराधिक अपील क्षेत्राधिकार 2023 की आपराधिक अपील संख्या 1381।

2018 के अपराधिक विविध/वाद सं. 6314 में एर्नाकुलम में केरल उच्च न्यायालय के दिनांक 06.11.2019 के निर्णय और आदेश से।

जुल्फिकार अली पी. एस., मनोज वी. जॉर्ज, सुश्री शिल्पा लिजा जॉर्ज, के. एम. विग्रेश राम, नसीब मसीह, सुश्री दर्शना नायर, सुश्री अक्षिता अग्रवाल, अपीलार्थी के लिए अधिवक्ता।

जी. प्रकाश, उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

संजय करोल, न्यायाधीश

अनुमति दी गई।

1. विचार के लिए दो प्रश्न उठते हैं-एक, क्या धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग के मान्यता प्राप्त मापदंडों के तहत, वर्तमान मामले के तथ्यों में, शक्ति का प्रयोग ना करना उचित है और दूसरा, क्या जिला पुलिस प्रमुख, कोट्टायम आगे की जांच का आदेश दे सकते थे जिसके अनुसार दूसरी अंतिम प्रतिवेदन दायर की गई थी?

2. विशेष अनुमति याचिका द्वारा वर्तमान अपील सी. आर. एल. में पारित केरल उच्च न्यायालय के एक आदेश के खिलाफ दायर की गई है। 2018 का अपराधिक विविध सं. 6314 दिनांक 6 नवंबर, 2019, जिसके तहत दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत शक्तियों का प्रयोग करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया गया था और आपराधिक मामला सं. 1326/2017 के तहत कार्यवाही को रद्द करने के लिए अयोग्य पाया गया था।

3. अपीलार्थी एवं आरोपी सं.-1 (अब मृत) पर भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 420 के तहत धोखाधड़ी करने का आरोप लगाया गया है। वास्तविक रूप से शिकायतकर्ता, अर्थात् सुनेश और सात अन्य व्यक्तियों को कोट्टायम रबर बोर्ड में उनके या उनकी पत्नियों के लिए लिपिक की नौकरियां हासिल करने के बदले में कुल तीन लाख तीरासी हजार पाँच सौ तीरासी रुपये की राशि, लेने का आरोप।

4. 24 अक्टूबर, 2015 को उपरोक्त धारा के तहत 1838/2015 संख्या वाली एक प्राथमिकी दर्ज की गई थी। हमारे सामने आरोपी नंबर 2 वास्तविक शिकायतकर्ता का चाचा है।

5. 30 दिसंबर, 2015 को अभिलेख पर रखी गई अंतिम प्रतिवेदन (इसके बाद, एफ. आर.-1) में लिखा है कि शिकायतकर्ता को इस संबंध में दस्तावेज प्रस्तुत प्रस्तुत के लिए कहा गया था, लेकिन नोटिस के बावजूद, उन्हें प्रस्तुत नहीं किया गया था और न ही किसी वित्तीय लेनदेन के संबंध में कोई अन्य दस्तावेज थे। यह तब कहता है-"चूंकि इस संबंध में कोई उचित सबूत नहीं है, इसलिए इसे एक झूठा मामला माना जाएगा।....."

6. दिलचस्प बात यह है कि एक और अंतिम प्रतिवेदन (इसके बाद, एफआर-II) अभिलेख का हिस्सा है। इसमें कहा गया है कि गवाह संख्या 10, अर्थात् एस. अनिलकुमार, पुलिस निरीक्षक, वायकॉम ने आदेश संख्या डी 2-43642/16 के अनुसार आगे की जांच की, जिला पुलिस प्रमुख, कोट्टायम द्वारा पारित किया गया।

7. इस अपील के माध्यम से यह आग्रह किया गया है कि कानून में निर्धारित प्रक्रिया का उल्लंघन करते हुए प्रभावी रूप से फिर से जांच का आदेश दिया गया था। आगे यह तर्क दिया गया है कि; धारा 420, भारतीय दंड संहिता के अवयवों को पूरा नहीं किया गया है-और इसलिए उच्च न्यायालय ने धारा 482 के तहत याचिका के विषय की कार्यवाही को रद्द नहीं करने में गलती की है; अपीलार्थी को कोई विशिष्ट भूमिका नहीं दी गई है; कि सभी गवाह के बयानों में, उल्लिखित नाम वास्तविक शिकायतकर्ता का है जिसने मृतक आरोपी संख्या 1 बाबू को पैसे दिए थे, और अन्य लोगों को उसे पैसे देने में उकसाने वाला था। विनय त्यागी बनाम इरशाद अली¹; टी. टी. एंटनी बनाम केरल राज्य²; विनुभाई हरिभाई मालवीय और अन्य बनाम गुजरात

1 (2013) 5 एससीसी 762

2 (2001) 6 एससीसी 181

राज्य³; रणधीर सिंह राणा बनाम राज्य (एन. सी. टी. दिल्ली)⁴; जी. वी. राव बनाम एल. एच. वी. प्रसाद⁵; हरि प्रसाद चमारिया बनाम बिशुन कुमार सुरेखा⁶ पर अपीलकर्ता ने निर्भर किया है।

8. उन तथ्यों पर ध्यान देने के बाद, जिनके कारण विशेष अनुमति याचिका द्वारा वर्तमान अपील की गई है और मुख्य तर्क दिए गए हैं, अब हम अपने सामने आने वाले मुद्दों पर कानून की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

9. दूसरे प्रश्न पर, कि क्या जिला पुलिस प्रमुख, कोर्टायायम का आदेश कानून में अनुज्ञेय था या नहीं, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 (8) के प्रासंगिक प्रावधान हैं जो निम्नानुसार है:

“(8) उप-धारा (2) के तहत दंडाधिकारी एक प्रतिवेदन भेजे जाने के बाद इस धारा की कोई भी बात किसी अपराध के संबंध में आगे की जांच में बाधा नहीं मानी जाएगी और जहां ऐसे अन्वेषण में, पुलिस स्टेशन का प्रभारी अधिकारी मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करता है, वह दंडाधिकारी को निर्धारित प्रपत्र में ऐसे साक्ष्य के संबंध में एक और प्रतिवेदन या प्रतिवेदनो को भेजेगा और उप-धारा (2) से (6) के प्रावधान, जहां तक हो सके, ऐसी प्रतिवेदन या प्रतिवेदनो के संबंध में लागू होंगे जो वे उप-धारा (2) के तहत भेजी गई प्रतिवेदन के संबंध में लागू होते हैं।”

10. धारा 173 दंड प्रक्रिया संहिता के विकास को न्यायालय द्वारा (विनुभाई हरिभाई मालवीय उपरोक्त) में नोट किया गया है कंडिका 25 में यह राय दी गई है कि दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के लागू होने के बाद जांच में एक पुलिस अधिकारी द्वारा

3 2019 एससीसी ऑनलाइन 1346

4 (1997) 1 एससीसी 361

5 (2000) 3 एससीसी 693

6 (1973) 2 एससीसी 823

किए गए साक्ष्य के संग्रह के लिए दंड प्रक्रिया संहिता के तहत सभी कार्यवाहियां शामिल होंगी। "सभी" में निस्संदेह धारा 173 (8) भी शामिल होगी। इसलिए, इस तरह की जांच का आदेश देने वाले दंडाधिकारी की धारा 190 के तहत प्राप्त शक्ति, धारा 173 (8) के तहत आगे की जांच को शामिल करेगी।

11. अपीलार्थियों की ओर से यह तर्क दिया गया है कि, परिणाम स्वरूप/इस मामले में पुनः अनुसंधान किया गया है।

12. इस न्यायालय ने विनय त्यागी (उपरोक्त) मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 और धारा 482 के तहत शक्तियों पर विस्तृत विचार किया।

"43. इस स्तर पर, हम आपराधिक न्यायशास्त्र का एक और अच्छी तरह से स्थापित सिद्धांत का भी उल्लेख करते हैं कि उच्चतर न्यायालयों के पास संहिता की धारा 482 या यहां तक कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत "आगे की जांच", "नए सिरे से" या "नए सिरे से" और यहां तक कि "पुनः जांच" का निर्देश देने का अधिकार क्षेत्र है। "नए सिरे से जाँच और पुनः अन्वेषण" "पर्याय हैं और कानून में उनके परिणाम समान होंगे। "उच्चतर न्यायालयों के पास जांच को एक एजेंसी से दूसरी एजेंसी में स्थानांतरित करने की शक्ति भी निहित है, बशर्ते न्याय के उद्देश्य इस तरह की कार्रवाई की मांग करें। बेशक, यह भी एक तय सिद्धांत है कि इस शक्ति का प्रयोग उच्चतर न्यायालयों द्वारा बहुत संयम और बड़ी सावधानी के साथ किया जाना चाहिए।

* * *

* * *

* * *

* * *

45. "पुनः अन्वेषण" या "नए सिरे से जांच" का आदेश/निर्देश देने की शक्ति उच्च न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र में आती है, वह भी असाधारण मामलों में। "यदि कोई संहिता के प्रावधानों की जांच करता है, तो प्रतिवेदन को रद्द करने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान

नहीं है, सिवाय इसके कि जांच एजेंसी एक समापन प्रतिवेदन दायर कर सकती है (जहां जांच एजेंसी के अनुसार, कोई अपराध किया जाना नहीं बनता है)। यहां तक कि ऐसी प्रतिवेदन भी विद्वान दंडाधिकारी द्वारा स्वीकृति के अधीन है, जो अपने विवेक से ऐसे प्रतिवेदन को स्वीकार कर सकता है या नहीं भी कर सकता है। वैध कारणों से, न्यायालय ऐसी प्रतिवेदन को स्वीकार करने से इंकार करके या मामले के अभिलेख और उसके साथ संलग्न दस्तावेजों के आधार पर भी आगे की जांच का निर्देश दे सकता है, अभियुक्त को समन कर सकता है।”

13. इसके विपरीत, राज्य का तर्क होगा कि केवल जिला पुलिस प्रमुख के आदेश पर आगे की जांच की गई थी। आगे की जाँच के संबंध में, विनय त्यागी (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने कहा है:

22. "आगे की जाँच" वह जगह है जहाँ जाँच अधिकारी धारा 173 (8) के संदर्भ में अदालत के समक्ष अंतिम प्रतिवेदन दायर किए जाने के बाद आगे मौखिक या दस्तावेजी साक्ष्य प्राप्त करता है। यह शक्ति कार्यपालिका के पास निहित है। यह पिछली जाँच की निरंतरता है और इसलिए, इसे "आगे की जाँच" के रूप में समझा और वर्णित किया जाता है। इस तरह की जांच का दायरा आगे मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य की खोज तक ही सीमित है। इसका उद्देश्य अदालत के समक्ष सही तथ्यों को लाना है, भले ही वे प्राथमिक जांच के लिए बाद के चरण में पाए जाएं। इसे आमतौर पर "पूरक प्रतिवेदन" के रूप में वर्णित किया जाता है। "पूरक प्रतिवेदन" सही अभिव्यक्ति होगी क्योंकि बाद की जांच का उद्देश्य अधिकार प्राप्त पुलिस अधिकारी द्वारा की गई प्राथमिक जांच को पूरा करना है। आगे की जाँच की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसका जाँच एजेंसी द्वारा की गई प्रारंभिक जाँच को प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष रूप से समाप्त करने का प्रभाव नहीं पड़ता है। यह पिछली जांच की एक तरह की निरंतरता है। इसका आधार नए साक्ष्य की खोज और उसी अपराध की निरंतरता और उसी घटना से संबंधित घटनाओं की श्रृंखला है। दूसरे शब्दों में, इसे "पुनः अनुसंधान", "ताजा" या "नये सिरे से " अनुसंधान के पूर्ण विरोधाभास में समझना होगा।"

14. आगे की जाँच और नए सिरे से जाँच/पुनः जाँच/नए सिरे से जाँच के बीच यह अंतर यह है कि पहली पिछली जाँच की निरंतरता है और नई सामग्री की खोज के आधार पर की जाती है, जबकि बाद वाली जाँच केवल तभी की जा सकती है जब उस प्रभाव के लिए अदालत का एक निश्चित आदेश हो जो यह कारण बताए कि पिछली जाँच पर कार्रवाई करने में असमर्थ क्यों है।

15. मीनू कुमारी बनाम बिहार राज्य⁷ में यह देखा गया कि धारा 173 (2) (i) के संदर्भ में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत करने पर संबंधित दंडाधिकारी समक्ष कार्रवाई के तीन तरीके उपलब्ध हैं:

(i) प्रतिवेदन को स्वीकार करें और आगे बढ़ें।

(ii) प्रतिवेदन से असहमत हों और कार्यवाही बंद कर दें।

(iii) धारा 156 (3) के तहत आगे की जांच का निर्देश दें जो एक संज्ञेय अपराध की जांच करने के लिए पुलिस की शक्ति है, और उन्हें आगे की प्रतिवेदन बनाने की आवश्यकता है।

16. हेमंत धस्माना बनाम सी. बी. आई.⁸ में यह कहा गया था कि हालांकि यह धारा आगे की जांच का आदेश देने की न्यायालय की शक्ति के संबंध में विशिष्ट नहीं है, लेकिन पुलिस की शक्ति को ऐसे न्यायालय के आदेश पर लागू किया जा

7 (2006) 4 एससीसी 359

8 (2001) 7 एससीसी 536

सकता है। यह भी कहा गया कि इस आदेश का उच्च न्यायालय के पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र के प्रयोग में भी हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए।

17. उपरोक्त दो मामले यह स्पष्ट करते हैं कि एक दंडाधिकारी के पास आगे की जांच का आदेश देने की शक्ति है और पहले संदर्भित मामले स्पष्ट करते हैं कि नए सिरे से जांच/पुनः जांच/नए सिरे से जांच उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आती है।

18. वर्तमान मामले में, जैसा कि एफ. आर. II से स्पष्ट है कि एस. अनिलकुमार, पुलिस निरीक्षक, वाइकोम ने एक पुलिस अधिकारी द्वारा पारित आदेश संख्या. D2-43642/16/K के अनुसार आगे की जांच की, न कि किसी विधिवत अधिकार प्राप्त न्यायिक अधिकारी द्वारा।

19. जिले का मुख्य पुलिस अधिकारी पुलिस अधीक्षक होता है जो भारतीय पुलिस सेवा का एक अधिकारी होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि जिला पुलिस प्रमुख का आदेश संबंधित दंडाधिकारी द्वारा जारी आदेश के समान नहीं है। विनय त्यागी (उपरोक्त) का उल्लेख करते हुए, यह न्यायालय देवेंद्र नाथ सिंह बनाम बिहार राज्य और अन्य⁹ के मामले में है। नोट किया गया कि आगे की जांच के लिए या पूरक प्रतिवेदन दायर करने के लिए अदालत से अनुमति लेने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है, लेकिन जांच एजेंसियों ने न केवल इसे ऐसा ही समझा है, बल्कि इसे कानूनी आवश्यकता के रूप में भी अपनाया है। तत्कालीन व्याख्या का सिद्धांत उन मामलों की ऐसी व्याख्या में सहायता करता है जिन्हें लंबे समय से समझा और एक विशेष तरीके से लागू किया गया है ताकि व्याख्यात्मक प्रक्रिया में स्वीकार किया जा सके। दूसरे शब्दों में आगे की जाँच या पूरक प्रतिवेदन दाखिल करने के लिए अनुमति की आवश्यकता कानून के भीतर स्वीकार की जाती है इसलिए इसका पालन करने कील आवश्यकता होती है ।

20. प्राप्त तथ्यों से, यह स्पष्ट है कि इस तरह की अनुमति कभी नहीं ली गई, न ही दी गई और न ही आदेश दिया गया। नतीजतन, एफ. आर.-II आधारहीन है। एफ. आर.-I में यह कहा गया है कि वित्तीय लेन-देन के संबंध में किसी भी दस्तावेज के अभाव में, वर्तमान मामले को एक झूठा मामला माना जा सकता है। तब इसका अनिवार्य रूप से यह तात्पर्य होगा कि विधिवत अधिकृत व्यक्ति द्वारा की गई उचित जांच के बाद, निष्कर्ष यह है कि प्राथमिकी में उल्लिखित धारा के अवयवों को पूरा नहीं किया गया है और कोई मामला नहीं बनाया गया है।

21. परमजीत बत्रा बनाम उत्तराखंड राज्य¹⁰ (दो-न्यायाधीश पीठ) यह कहा गया कि उच्च न्यायालय को धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का उपयोग केवल संयम से और न्याय के उद्देश्यों को सुविधाजनक बनाने के लिए करना चाहिए। यह भी देखा गया कि अदालत को यह देखना चाहिए कि क्या एक विवाद जो अनिवार्य रूप से नागरिक प्रकृति का है, उसे आपराधिक अपराध का कवच दिया जाता है। ऐसी स्थिति में उच्च न्यायालय को अदालत की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

22. हरियाणा राज्य बनाम भजन लाल¹¹ (दो-न्यायाधीशों की पीठ) में सात ऐसे उदाहरण निर्धारित किए गए थे जिनमें भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 की शक्ति या धारा 482, दंड प्रक्रिया संहिता के तहत अंतर्निहित शक्तियों का उचित रूप से प्रयोग किया जाएगा। वे हैं -

"(1) जहां प्रथम सूचना प्रतिवेदन या शिकायत में लगाए गए आरोप, भले ही उन्हें उनके प्रत्यक्ष मूल्यांकन पर लिया गया हो और उनकी संपूर्णता में स्वीकार किया गया हो तथा प्रथम दृष्टया किसी अपराध का गठन नहीं करते हैं या आरोपी के खिलाफ मामला नहीं बनाते हैं।

10 (2013) 13 एस. सी. 673

11 1992 पूरक (1) 335

(2) जहां प्रथम सूचना प्रतिवेदन में आरोप और प्राथमिकी के साथ अन्य सामग्री, यदि कोई हो प्राथमिकी के साथ एक संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं करते हैं, तो संहिता की धारा 155 (2) के दायरे में न्यायाधीश के आदेश के अलावा संहिता की धारा 156 (1) के तहत पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच को उचित ठहराते हैं।

(3) जहां प्रथम सूचना प्रतिवेदन या शिकायत में लगाए गए निर्विवाद आरोप और उनके समर्थन में एकत्र किए गए साक्ष्य किसी भी अपराध के घटित होने का खुलासा न करें और आरोपी के खिलाफ मामला बनाए

(4) जहां, प्रथम सूचना प्रतिवेदन में आरोप एक संज्ञेय अपराध का गठन नहीं करते हैं, लेकिन केवल एक गैर-संज्ञेय अपराध का गठन करते हैं, वहां एक पुलिस अधिकारी द्वारा मजिस्ट्रेट के आदेश के बिना किसी भी जांच की अनुमति नहीं दी जाती है जैसा कि संहिता की धारा 155 (2) के तहत विचार किया गया है।

(5) जहां प्रथम सूचना प्रतिवेदन या शिकायत में लगाए गए आरोप इतने बेतुके और स्वाभाविक रूप से असंभव हैं कि उनके आधार पर कोई भी विवेकशील व्यक्ति कभी भी इस न्यायसंगत निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सकता कि अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है।

(6) जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम के किसी भी प्रावधान में (जिसके अधीन कोई दंडिक कार्यवाही संस्थित की जाती है) के संस्था और कार्यवाही जारी रखने पर स्पष्ट कानूनी रोक है और/या जहाँ संहिता या संबंधित अधिनियम में पीडित पक्ष की शिकायत के लिए प्रभावशाली निवारण करने वाला कोई विशिष्ट प्रावधान है

(7) जहां किसी आपराधिक कार्यवाही को स्पष्ट रूप से दुर्भावनापूर्ण तरीके से देखा जाता है और/या जहाँ अभियुक्तों से प्रतिशोध लेने के गुप्त उद्देश्य से

दुर्भावनापूर्ण ढंग से और निजी और व्यक्तिगत द्वेष के कारण कार्यवाही शुरू की जाती है।”

23. इन श्रेणियों के मामलों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया गया है नीहरिका इन्फ्रास्ट्रक्चर प्राइवेट लिमिटेड बनाम महाराष्ट्र राज्य मामले¹² में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत शक्ति के प्रयोग के संबंध में सिद्धांतों को संक्षेप में निम्नानुसार प्रस्तुत किया गया है:

क. पुलिस को संज्ञेय अपराधों की जांच करने का वैधानिक अधिकार होने के साथ-साथ दंड प्रक्रिया संहिता के तहत कर्तव्य भी है।

ख. न्यायालयों को संज्ञेय अपराध की किसी भी जांच में बाधा नहीं डालनी चाहिए।

ग. जब प्रथम सूचना प्रतिवेदन का अवलोकन किसी भी प्रकार के अपराध का खुलासा नहीं करता है, तो अदालत जांच को आगे बढ़ने की अनुमति नहीं देती है।

घ. इस धारा के तहत शक्तियों का उपयोग 'संयम' और उचित सावधानी के साथ किया जाना है। ऐसा करते समय, न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए कि क्या प्रथम सूचना प्रतिवेदन में लगाए गए आरोप संज्ञेय अपराध के होने का खुलासा करते हैं या नहीं, मामले के गुण-दोष में गए बिना।

ड. इस शक्ति का प्रयोग करते हुए, प्रथम सूचना प्रतिवेदन/शिकायत में लगाए गए आरोपों की वैधता या विश्वसनीयता के प्रश्नों में जाना अदालत का काम नहीं है।

च. किसी शिकायत को रद्द करने को नियम का दर्जा नहीं मिल जाना चाहिए, और यह एक दुर्लभता में होनी चाहिए, और न ही इस तरह की शक्ति का प्रयोग करते हुए, एक जांच को अनावश्यक रूप से कम किया जाना चाहिए;

12 2021 एस. सी. सी. ऑनलाइन 315

छ. पुलिस और न्यायालय राज्य के दो अलग-अलग अंग हैं जो गतिविधियों के विशिष्ट क्षेत्रों के साथ, पूरक कार्यों के साथ हैं, और इसलिए, न्याय प्राप्त करने और उसके न्याय वैफल्य को रोकने के हित के अलावा, पूर्व के कार्य में उत्तराद्ध द्वारा अनुचित हस्तक्षेप करना घृणित है।

ज. यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि एक प्राथमिकी से निपटने के लिए प्रक्रिया अच्छी तरह से स्थापित है, जिस पर जांच के बाद कोई गुण नहीं पाई जाती है, तो अधिकारी उस प्रभाव के लिए उपयुक्त आवेदन दायर कर सकता है जिस पर मामले को जब्त करने वाले विद्वान दंडाधिकारी द्वारा विचार किया जाएगा;

24. प्रथम सूचना प्रतिवेदन में आरोपीत अपराध भारतीय दंड संहिता की धारा 420 के अंतर्गत है जो धोखाधड़ी का एक गंभीर रूप है जिसमें संपत्ति और/या मूल्यवान प्रतिभूतियों के सुपुर्दगी के मामले में प्रलोभन शामिल है। इस धारा के तहत अपराध का गठन करने के लिए जिन तत्वों को पूरा किया जाना चाहिए, उन पर ध्यान दिया गया है। विजय कुमार घई और अन्य बनाम. पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य¹³ दो न्यायाधीशों की पीठ द्वारा (जिसमें हममें से एक, कृष्ण मुरारी, न्यायाधीश):

"35. संपत्ति के वितरण को प्रेरित करने में धोखाधड़ी के अपराध को स्थापित करने के लिए, निम्नलिखित तत्वों को साबित करने की आवश्यकता है:

(i) व्यक्ति द्वारा किया गया अभ्यावेदन गलत था।

(ii) अभियुक्त को पहले से जानकारी थी कि उसने जो अभ्यावेदन दिया था वह गलत था।

(iii) अभियुक्त ने जिस व्यक्ति को धोखा दिया गया था, उसे धोखा देने के लिए बेईमान इरादे से गलत अभ्यावेदन किया।

(iv) वह कार्य जहां अभियुक्त व्यक्ति को संपत्ति देने या ऐसा कोई कार्य करने या उससे दूर रहने के लिए प्रेरित करता है जो व्यक्ति ने नहीं किया होता या अन्यथा किया होता।

36. जैसा कि इस न्यायालय ने आर. के. विजयसारथी बनाम सुधा सीताराम [आर. के. विजयसारथी बनाम सुधा सीताराम, (2019) 16 एस. सी. सी. 739:(2020) 2 एस. सी. सी. (सी. आर. आई.) 454], के मामले में अवलोकन किया एवं माना कि धारा 420 के तहत अपराध का गठन करने के लिए तत्व निम्नानुसार हैं:

(i) किसी व्यक्ति को धारा 415 के तहत धोखाधड़ी का अपराध करना चाहिए; और

(ii) ठगे गए व्यक्ति को बेईमानी से प्रेरित किया जाना चाहिए:

(क) किसी भी व्यक्ति को संपत्ति वितरित करना; या

(ख) मूल्यवान प्रतिभूति या हस्ताक्षरित या सीलबंद और मूल्यवान प्रतिभूति में परिवर्तित होने में सक्षम किसी भी चीज़ को बनाना, बदलना या नष्ट करना। इस प्रकार, धारा 420 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध का गठन करने के लिए धोखाधड़ी एक आवश्यक तत्व है।”

25. सार्थक तौर पर, यह दिखाने के लिए कोई सामग्री अभिलेख पर नहीं रखी गई है कि आरोपी नंबर 1 बाबू (अब मृत), वर्तमान अपीलार्थी या वास्तविक शिकायतकर्ता द्वारा किया गया अभ्यावेदन गलत था या उन्हें इस तरह के अभ्यावेदन के गलत होने की पूर्व जानकारी थी और केवल धोखा देने के इरादे से किया गया था। इस आशय के केवल बयान हैं कि सात व्यक्तियों द्वारा याद दिलाने के बावजूद उनके या उनकी पत्नियों के लिए कोई नौकरी सुरक्षित नहीं थी। वर्तमान मामले में आवश्यक चार में से एकमात्र तत्व यह है कि सामान्य रूप से, किसी भी व्यक्ति ने अभियुक्त को

कोई पैसा नहीं दिया होता, और इसलिए उन्हें संपत्ति देने के लिए प्रेरित किया जाता जो अन्यथा उनके पास नहीं होता। किसी भी वित्तीय लेन-देन का कोई प्रमाण अभिलेख में नहीं है, तथा वर्तमान अपीलार्थी के बारे में नहीं के बराबर है।

26. केवल एक घटक को पूरा करने और केवल बेईमान इरादे या बयान के झूठ को दिखाने के लिए दिए गए बयानों के साथ, धारा 420 की सीमा का उल्लंघन नहीं होता है, जिससे अपराध का गठन हो।

27. इसलिए, पहले प्रश्न का उत्तर नकारात्मक में दिया जाता है।

28. दूसरे प्रश्न के संदर्भ में, उपरोक्त चर्चा से स्पष्ट होता है कि जिला पुलिस प्रमुख, कोर्टायायम आगे अनुसंधान का आदेश नहीं दे सकते थे क्योंकि वह शक्ति या तो संबंधित मजिस्ट्रेट या उच्च न्यायालय के पास होती है, न कि किसी जाँच एजेंसी के पास।

29. उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, केरल उच्च न्यायालय द्वारा क्रिमिनल मिसलेनियस (अपराधिक विधि वाद) संख्या- 6314/18 में 6 नवंबर 2019 को पारित किया गया था, रद्द किया जाता है तथा आपराधिक वाद संख्या-132/2017 को खंडित किया जाता है। उपरोक्त शर्तों के साथ अपील की अनुमति दी जाती है और लंबित आवेदन यदि कोई हो, का निबटारा किया जाता है।

निधि जैन

(राखी, एलसीआरए द्वारा सहायता प्राप्त)